द बिग पिक्चर: 9वीं अनुसूची और SC/ST एक्ट

संदर्भ एवं पृष्ठभूमि

हाल ही में पहले अप्रैल में और उसके बाद मई में दायर पुनर्विचार याचिकाओं के जवाब में सुप्रीम कोर्ट ने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम [Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act] 1989 से जुड़े अपने 20 मार्च के फैसले पर रोक लगाने या उसमें बदलाव करने से साफ इनकार कर दिया। शीर्ष अदालत ने कहा कि उसने इस एक्ट के प्रावधानों को छुआ भी नहीं है, केवल तुरंत गिरफ्तार करने की पुलिस की शक्तियों पर लगाम लगाई है।

इस फैसले को निष्प्रभावी करने के लिये सरकार एक अध्यादेश लाने पर विचार कर रही है तथा संसद के आगामी मानसून सत्र में एक संशोधन विधेयक लाकर उसे संविधान की 9वीं अनुसूची में डालने की तैयारी भी की जा रही है, ताकि उसे अदालत में चुनौती न दी जा सके। 9वीं अनुसूची में डाले गए कानूनों को अनुच्छेद 31B के तहत संरक्षण मिल जाता है तथा उन्हें अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती।

मुद्दा क्या था?

पुणे के राजकीय फार्मेसी कॉलेज में कार्यरत अधिकारी डॉ. सुभाष काशीनाथ महाजन की याचिका पर 20 मार्च को सुप्रीम कोर्ट में जस्टिस आदर्श कुमार गोयल और जस्टिस उदय उमेश ललित की पीठ ने एससी/एसटी एक्ट के बड़े पैमाने पर हो रहे दुरुपयोग की बात को स्वीकारते हुए यह फैसला सुनाया था।

क्या कहा सुप्रीम कोर्ट ने?

- गिरफ्तार करने की शक्ति आपराधिक दंड संहिता (सीआरपीसी) से आती है, एससी/एसटी कानून से नहीं।
- सुप्रीम कोर्ट ने केवल इस प्रक्रियात्मक कानून की व्याख्या की है, एससी/एसटी एक्ट की नहीं।
- सुप्रीम कोर्ट के दो जजों की बेंच ने कहा कि वह इस एक्ट के खिलाफ नहीं है, लेकिन निर्दोषों को सज़ा नहीं मिलनी चाहिये।
- निर्दोष व्यक्तियों को इस कानून के प्रावधानों से आतंकित नहीं किया जा सकता और किसी भी व्यक्ति को उसके जीने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।
- साथ ही कोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि वह इस कानून या इस पर अमल के विरुद्ध नहीं है।

उल्लेखनीय है कि एससी-एसटी एक्ट पर सुप्रीम कोर्ट के 20 मार्च को दिये गए फैसले के संदर्भ में केंद्र सरकार ने पुनर्विचार याचिका दाखिल की है। केंद्र सरकार ने अपनी पुनर्विचार याचिका में कहा कि निर्णय में इस कानून के प्रावधानों को शिथिल करने के दूरगामी परिणाम होंगे। इससे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर प्रतिकूल असर पड़ेगा तथा यह फैसला एससी-एसटी एक्ट, 1989 में परिलक्षित संसद की विधायी नीति के भी विपरीत है।

क्या है SC/ST (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम?

- अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ अत्याचारों की रोकथाम के लिये लाया गया था। मुख्य अधिनियम अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,1989 का यह संशोधित प्रारूप है।

इस फैसले में एससी/एसटी एक्ट, 1989 के तहत किसी भी तरह के अपराध के मामले में निम्नलिखित नए दिशा-निर्देश जारी किये गए:

न्यायालय द्वारा जारी किये गए नए दिशा-निर्देश

- ऐसे मामलों में किसी भी निर्दोष को कानूनी प्रताड़ना से बचाने के लिये कोई भी शिकायत मिलने पर तत्काल एफआईआर दर्ज नहीं की जाएगी।
- सबसे पहले शिकायत की जाँच डीएसपी स्तर के पुलिस अफसर द्वारा की जाएगी।
- यह जाँच पूर्ण रूप से समयबद्ध होनी चाहिये और किसी भी स्थिति में 7 दिन से अधिक समय तक न चले।
- इन नियमों का पालन न करने की स्थिति में पुलिस पर अनुशासनात्मक एवं न्यायालय की अवमानना करने के संदर्भ में कार्रवाई की जाएगी।
- अभियुक्त की तत्काल गिरफ्तारी नहीं की जाएगी।
- सरकारी कर्मचारियों को नियुक्त करने वाले उच्चाधिकारी की लिखित स्वीकृति के बाद ही गिरफ्तारी हो सकती है।
- अन्य लोगों को ज़िले के एसएसपी की लिखित मंज़ूरी के बाद ही गिरफ्तार किया जा सकेगा।

- गिरफ्तारी के बाद अभियुक्त की पेशी के समय मजिस्ट्रेट द्वारा उक्त कारणों पर विचार करने के बाद यह तय किया जाएगा कि क्या अभियुक्त को और अधिक समय के लिये हिरासत रखा जाना चाहिये अथवा नहीं।
- इस मामले में सरकारी कर्मचारी अग्रिम जमानत के लिये भी आवेदन कर सकते हैं।
- विदित हो कि इस अधिनियम की धारा-18 के तहत अभियुक्त को अग्रिम जमानत दिये जाने पर भी रोक है।

इस मामले की सुनवाई के दौरान कोर्ट ने कहा कि गिरफ्तारी से पहले शिकायत की जाँच करने का आदेश अनुच्छेद 21 में व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार पर आधारित होता है। संसद भी अनुच्छेद 21 के जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार व निष्पक्ष प्रक्रिया को नज़रअंदाज़ करने वाला कानून नही बना सकती। यह कैसा सभ्य समाज है, जहाँ किसी के एकतरफा बयान पर लोगों पर कभी भी गिरफ्तारी की तलवार लटकती रहती है।

कोर्ट ने इन्हें माना अपने फैसले का आधार

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़े: नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के संबंध में विचार करने पर पता चलता है कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम में दर्ज ज़्यादातर मामले झूठे पाए गए।

सामाजिक न्याय विभाग की वार्षिक रिपोर्ट

- न्यायालय ने अपने फैसले में ऐसे कुछ मामलों का उल्लेख किया, जिसके अनुसार 2016 की पुलिस जाँच में अनुसूचित जाति को प्रताड़ित किये जाने के 5347 झूठे मामले सामने आए, जबकि अनुसूचित जनजाति के कुल 912 मामले झूठे पाए गए।
- 2015 में एससी/एसटी कानून के तहत न्यायालय द्वारा कुल 15638 मुकदमों का निपटारा किया गया। इसमें से 11024 मामलों में या तो अभियुक्तों को बरी कर दिया गया या फिर वे आरोप मुक्त साबित हुए, जबकि 495 मुकदमों को वापस ले लिया गया।
- केवल 4119 मामलों में ही अभियुक्तों को सज़ा सुनाई गई। ये सभी आँकड़े 2016-17 की सामाजिक न्याय विभाग की वार्षिक रिपोर्ट में पेश किये गए हैं।

अध्यादेश और उसके बाद संविधान संशोधन लाया जा सकता है

एससी/एसटी कानून में तत्काल एफआईआर और गिरफ्तारी पर रोक लगाने वाले फैसले के खिलाफ केंद्र सरकार की पुनर्विचार याचिका पर सुप्रीम कोर्ट अब जुलाई में आगे सुनवाई करेगा। फिलहाल कोर्ट ने अपने 20 मार्च के आदेश को जस-का-तस रखा है। इसके मद्देनज़र केंद्र सरकार अब एससी/एसटी एक्ट के तहत गिरफ्तारी पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले को बदलने के लिये एक अध्यादेश लाने जा रही है।

इसके बाद संसद के मानसून सत्र में एक संशोधन विधेयक लाने की भी तैयारी की जा रही है, जिसमें यह व्यवस्था की जाएगी कि एससी/एसटी एक्ट के प्रावधानों को न्यायालय में चुनौती न दी जा सके। इसके लिये संशोधन विधेयक के ज़रिये इसे संविधान की 9वीं अनुसूची के दायरे में लाया जाएगा।

अनुच्छेद 31बी के तहत संरक्षण दिया जाएगा

जिस संशोधन पर विचार किया जा रहा है, उसके अंतर्गत इस कानून को संविधान के अनुच्छेद 31बी के तहत संरक्षण प्राप्त होगा। इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था है कि 9वीं अनुसूची में दर्ज किसी भी कानून को 'इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह किसी अदालत या न्यायाधिकरण के किसी जजमेंट, डिक्री या ऑर्डर से मेल नहीं खाता या इनके ज़रिये दिये गए अधिकारों को छीनता है।

क्या है 9वीं अनुसूची?

- 1951 में केंद्र सरकार ने संविधान में संशोधन करके 9वी अनुसूची का प्रावधान किया था ताकि उसके द्वारा किये जाने वाले भूमि सुधारों को अदालत में चुनौती न दी जा सके।
- उस समय सरकार द्वारा शुरू किये गए भूमि सुधारों को मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार की अदालतों में चुनौती दी गई थी, जिसमें से बिहार में इस कानून को अदालत ने अवैध ठहराया था।
- इस विषम स्थिति से बचने और सुधारों को जारी रखने के लिये सरकार ने संविधान में यह अनुसूची प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 के द्वारा जोड़ी थी।
- इसके अंतर्गत राज्य द्वारा संपत्ति के अधिग्रहण की विधियों का उल्लेख किया गया है।

पहले इस अनुसूची में शामिल कानूनों की न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती थी, लेकिन 11 जनवरी, 2007 को सुप्रीम कोर्ट की 9-सदस्यीय संविधान पीठ के एक निर्णय द्वारा यह स्थापित किया गया कि 9वीं अनुसूची में शामिल किसी भी कानून को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि वह मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है।

(टीम दृष्टि इनपुट)

समीक्षा के दायरे में हैं 9वीं अनुसूची में रखे गए कानून

11 जनवरी, 2007 को तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश वाई.के. सभरवाल की अध्यक्षता वाली अशोक भान, अरिजित पसायत, बी.पी. सिंह, एस.एच. कपाड़िया, सी.के. ठक्कर, पी.के बालासुब्रमण्यम, अल्तमस कबीर तथा न्यायमूर्ति डी.के. जैन की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से फैसला दिया कि संविधान के भाग-3 में प्रदत्त मौलिक अधिकार संविधान के मूल ढाँचे का अहम हिस्सा हैं। इनका किसी भी तरीके से उल्लंघन किये जाने पर न्यायालय इसकी समीक्षा कर सकता है।

क्या कहा था संवधिान पीठ ने?

- फैसले में कहा गया कि 24 अप्रैल, 1973 को सुप्रीम कोर्ट के केशवानंद भारती मामले में आए फैसले के बाद संविधान की 9वीं अनुसूची में शामिल किये गए किसी भी कानून की न्यायिक समीक्षा हो सकती है।
- इस संविधान पीठ ने व्यवस्था दी कि किसी भी कानून को बनाने और इसकी वैधानिकता तय करने की शक्ति किसी एक संस्था पर नहीं छोड़ी जा सकती।
- संसद द्वारा बनाए गए कानूनों की व्याख्या न्यायपालिका को करनी है और उनकी वैधानिकता की जाँच संसद के बजाय न्यायालय ही करेगा।
- इन कानूनों को न्यायिक समीक्षा से बाहर रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती और संविधान के भाग-3 में प्रदत्त मौलिक अधिकार और भाग-4 में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक तत्व संविधान के मूल ढाँचे का अहम हिस्सा हैं। इनके उल्लंघन अथवा अतिक्रमण को सुप्रीम कोर्ट असंवैधानिक ठहरा सकता है।
- विदित हो कि वर्तमान में 9वीं अनुसूची में लगभग 284 कानून हैं जिनकी न्यायिक समीक्षा सुप्रीम कोर्ट के उपरोक्त फैसले से पहले संभव नहीं थी।

इस फैसले से यह तो स्पष्ट हो गया था कि सुप्रीम कोर्ट 9वीं अनुसूची के राजनीतिक इस्तेमाल को रोकना चाहता है। देश में कई ऐसे कानून बनाए गए हैं जो संविधान के प्रावधानों या सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के विपरीत जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, संविधान के तहत अधिकतम 50% आरक्षण का प्रावधान है, लेकिन तमिलनाडु में एक कानून बनाकर सरकारी नौकरियों में 61% आरक्षण दिया जा रहा है। तमिलनाडु सरकार के इस कदम को अदालत में चुनौती इसलिये नहीं दी जा सकी थी क्योंकि उसे 9वीं अनुसूची में डाला गया है।

संसद नहीं संविधान सर्वोपरि

हाल के वर्षों में कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच संबंध बहुत मधुर नहीं रहे हैं। न्यायपालिका पर अपनी सीमा का अतिक्रमण करने का आरोप लगता रहा है, तो कई मौकों पर न्यायपालिका के शीर्षस्थ सदस्यों ने न्यायिक पीठों को नुकसान पहुँचाने वाले मुद्दों को सुलझाने में कार्यपालिका की असफलता को लेकर अपनी निराशा भी जताई है। लेकिन इसी न्यायपालिका ने दो ऐसे ऐतिहासिक फैसले अतीत में दिये हैं, जिन्होंने यह स्थापित किया कि संसद नहीं, संविधान सर्वोपरि है।

गोलकनाथ मामला

पहला फैसला 1967 में गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य मामले में आया, जिसमें गोलकनाथ परिवार ने पंजाब में भूमि हदबंदी कानून के तहत उनकी खेती की ज़मीन के अधिग्रहण को चुनौती दी थी। गोलकनाथ परिवार ने तर्क दिया कि उनकी ज़मीन का अधिग्रहण संविधान द्वारा दिये गए कानून के समक्ष समानता और क़ानून के समान संरक्षण के मौलिक अधिकारों के ख़िलाफ है।

इस केस में एक बेहद महत्त्वपूर्ण सवाल उठा...क्या मौलिक अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है? इस मामले मे 11 जजों वाली संविधान पीठ ने पूर्व में पाँच जजों वाली संविधान पीठ द्वारा एक मामले (शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ) में सुनाए गए फ़ैसले की समीक्षा की, जिसमें कहा गया था कि संसद के पास संविधान के किसी भी भाग का संशोधन करने का अधिकार है। इस केस में सुप्रीम कोर्ट ने अपने पहले के निर्णय को पलट दिया और यह कहा कि संसद को मौलिक अधिकारों का खंडों में या पूर्णता में संशोधन करने का अधिकार नहीं है। यह ठीक है कि राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों को लागू कराना कार्यपालिका का कर्त्तव्य है, लेकिन ऐसा मौलिक अधिकारों में बदलाव करके नहीं किया जा सकता।

केशवानंद भारती मामला

भारत के न्यायिक इतिहास में केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य नाम से प्रसिद्ध इस केस का नाम मठ के पुजारी के नाम पर पड़ा था। चूँकि यह मामला भी संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन की शक्तियों की व्याख्या से संबंधित था, इसलिये इसकी सुनवाई 13 जजों वाली संविधान पीठ ने की थी, क्योंकि गोलकनाथ मामले की सुनवाई 11 जजों वाली पीठ पहले ही कर चुकी थी।

अप्रैल, 1973 में जब सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में अपना फैसला सुनाया तब सुनवाई कर रही पीठ स्पष्ट रूप से दो हिस्सों में बंटी हुई नज़र आई। 7 जज फैसले के पक्ष में थे और 6 विपक्ष में। कुछ ऐसा ही गोलकनाथ मामले में देखने को मिला था, जिसमें 6-5 के बहुमत से फैसला हुआ था।

केशवानंद भारती केस में सुप्रीम कोर्ट ने गोलकनाथ मामले में दिये गए फैसले को पलटते हुए कहा कि संसद के पास संविधान को संशोधित करने का अधिकार है, बशर्ते संविधान के मूलभूत ढांचे (Basic Structure) से छेड़छाड़ न की गई हो। कोर्ट ने संदेह की सभी संभावनाओं को नकारते हुए कहा कि संविधान का 'मूलभूत ढांचा' एक पवित्र चीज़ है और इससे छेड़छाड़ करने की अनुमति किसी को भी नहीं दी जा सकती।

(टीम दृष्टि इनपुट)

निष्कर्ष: लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार दिये गए हैं और कानून के समक्ष भी सभी को समान माना गया है। ऐसे में किसी भी नागरिक के अधिकारों का हनन अनुचित है फिर चाहे वह सवर्ण हो या दलित। न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय भी इसी तर्क की पुष्टि करता है। यह शासनतंत्र की ज़िम्मेदारी है कि वह पिछड़े समुदायों और दलितों के संरक्षण हेतु बनाए गए कानूनों का ईमानदारीपूर्वक और भेदभाव रहित दृष्टिकोण अपनाकर अनुपालन सुनिश्चित करे, जिससे इन वर्गों के भीतर उत्पन्न असुरक्षा और उत्पीड़न का डर समाप्त हो सके एवं इनका शासनतंत्र और न्याय प्रणाली में विश्वास बना रहे। साथ ही यह देखना भी सरकार का दायित्व है कि इन कानूनों का दुरुपयोग किसी निरपराध को परेशान करने में न किया जाए और ये आपसी दुश्मनी निकालने का एक 'टूल' बनकर न रह जाएँ।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/9th-schedule-and-sc-st-act